आमुख कथा

# यह संसार धर्मशाला है

*राती रुति थिति वार। पवन पानी अगनी पाताल।।*
*तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।*
*तिसु विचि जीअ जुगुति के रंग। तिनके नाम अनेक अनंत।।*
*करमी करमी होइ वीचारु। साचा आप साचा दरबारु।।*
*तिथै सोहनि पंच परवाणु। नदरी करमी पवै नीसाणु।।*
*कच पकाई ओथै पाइ। 'नानक' गाइआ जापै जाइ।।*

नानक के सूत्र के पहले कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात, कि जीवन को जो लक्ष्य मान लेता है, वह भटक जाता है। जीवन केवल एक अवसर है, लक्ष्य नहीं। मार्ग है, गंतव्य नहीं। उससे कहीं पहुंचना है। जीवित होने से ही मत समझ लेना कि पहुंच गए। जीवन कोई सिद्धि नहीं है, केवल एक प्रक्रिया है। उससे ठीक से गुजरे, तो पहुंच जाओगे। ठीक से न गुजरे, तो भटक जाओगे।

जीवन को ही जो सब कुछ मान लेता है, वही नास्तिक है। और जीवन के पार जिसके लिए पहुंचने को कोई मंजिल है, वही आस्तिक है। आस्तिक के लिए जीवन एक पड़ाव है। नानक कहते हैं, धर्मशाला। वहां रुकना है थोड़ी देर, लेकिन सदा के लिए उसे घर नहीं बना लेना। जिसने उसे ही घर बना लिया, वह असली घर से वंचित रह जाएगा। चले थे कुछ पाने, मार्ग में ही घर समझ लिया, तो फिर मंजिल तक कैसे पहुंचेंगे? कौन चलेगा?

संसार घर नहीं है। और जिन्होंने संसार को घर बना लिया, है, उन्हीं को हम गृहस्थ कहते हैं। गृहस्थ का अर्थ यह नहीं है कि आप घर में रहते हैं। गृहस्थ का अर्थ है कि संसार को घर बना लिया है।

संन्यासी का अर्थ है कि संसार धर्मशाला है, घर नहीं। रहता तो वह भी

वहीं है, जाएगा कहां? रहना तो घर में ही पड़ेगा, लेकिन घर को देखने का ढंग बदल जाता है। तुम घर को समझते हो यही मंजिल है, पहुंच गए। और संन्यासी समझता है धर्मशाला है, सराय है, कहीं और जाना है। और भूलता नही मंजिल को। रुके कहीं, हजारों धर्मशालाओं में रुकना पड़े, तो भी मंजिल की याद रखता है।

वही 'सुरति' है। उस याद को जिसने रखा, जिसने उस याद के धागे को न खोया, वह सभी धर्मशालाओं में रुकेगा और पार होता जाएगा। कोई धर्मशाला उसे पकड़ न पाएगी। रहेगा संसार में, लेकिन संसार के बाहर रहेगा। तुम्हारी मंजिल जहां है, वहीं तुम हो। जहां तुम जा रहे हो, वहीं तुम हो। वहां तुम नहीं होते, जहां तुम हो। जहां तुम पहुंचना चाहते हो, जहां तुम्हारा ध्यान होता है, वहीं तुम हो। यह पहली बात समझ लेना जरूरी है।

अधिक लोग, करीब-करीब सभी, करोड़ों में एकाध को छोड़ कर, जो मिला है, समझते हैं यही अंत है। जो मिला है, यह तो प्रारंभ भी नहीं है। यह तो भवन का द्वार भी नहीं है। ये तो भवन की सीढ़ियां भी नहीं हैं। तुम तो मार्ग पर हो, अभी सीढ़ियां आएंगी। जिसके जीवन में सीढ़ियां आ गयीं, धर्म आ गया। जो मार्ग पर है, वह संसारी है। जिसके जीवन में सीढ़ियां आ गयीं, वह साधक। और जो भवन में प्रतिष्ठित हो गया, वह सिद्ध। तुम्हारे जीवन में अभी सीढ़ियां भी नहीं आयी हैं। अभी तुमने साधना भी शुरू नहीं की है।

और इस भ्रांति का गहरे से गहरा कारण यही है कि तुम्हें जो मिल गया है, तुम उससे संतुष्ट हो गए हो। ध्यान रखना, धार्मिक आदमी एक अर्थ में तो बिलकुल संतुष्ट होता है, और एक दूसरे अर्थ में उससे ज्यादा असंतुष्ट आदमी खोजना कठिन है। संतुष्ट होता है इस अर्थ में, कि परमात्मा से उसकी कोई शिकायत नहीं। और असंतुष्ट होता है इस अर्थ में, कि अपने से उसकी बड़ी शिकायत है।

अधार्मिक आदमी की परमात्मा से तो शिकायत होती है—तूने यह नहीं दिया, तूने यह नहीं दिया, अपने से कोई शिकायत नहीं होती। अपने से अधार्मिक आदमी संतुष्ट होता है। वही संतोष कब्र बन जाती है। क्योंकि अगर तुम अपने से संतुष्ट हो, तो विकसित कैसे होओगे? बढ़ोगे कैसे? आकाश को छूने के लिए पंख कैसे खोलोगे? तुम अपने घोंसले में ही कैद हो जाओगे। तुम अपने पिंजड़े में ही मर जाओगे।

परमात्मा से तो संतोष चाहिए, अपने से असंतोष। हालत उलटी है।

अपने से तो हम संतुष्ट हैं, परमात्मा से असंतोष है। सारे जगत के प्रति हमारा असंतोष है। कुछ भी ठीक नहीं मालूम होता, सिर्फ हम ठीक मालूम होते हैं। और वही ठीक नहीं है, शेष सब ठीक है। तुम्हारे अतिरिक्त कहीं कोई भूल-चूक नहीं है। सारा जगत बड़ी शांति और आनंदमग्नता से प्रवाहित है। कहीं कोई बाधा नहीं है। सिर्फ तुम्हारे भीतर कहीं अवरोध है।

तो धार्मिक आदमी एक गहरा असंतोष है अपने प्रति, कि मैं जैसा हूं, परमात्मा के योग्य नहीं हूं। मैं जैसा हूं, अभी अर्चना न कर सकूंगा, अभी पूजा न कर सकूंगा। अभी मैं जैसा हूं, कैसे स्वीकार हो सकूंगा? अभी मैं जैसा हूं, वह उसके योग्य नहीं हूं। उसके योग्य बनना है। उसके स्वीकार के योग्य पात्र बनना है। अपने को इस योग्य बनाना है कि वह मेहमान बनने को राजी हो जाए। मेरे हृदय में उसके लायक सिंहासन बनाना है।

**तुम परमात्मा की आकांक्षा कर रहे हो। कभी तुमने सोचा कि अगर परमात्मा आ जाए, तो तुम्हारी क्या गति होगी? तुम तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कहां बिठाओगे उसे? तुम कैसे उसका स्वागत करोगे? तुम तो भाग खड़े होओगे अपने घर से**

तो धार्मिक व्यक्ति अपने से तो असंतुष्ट होता है। इसलिए एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि वह अपने को बढ़ाते-बढ़ाते, निखारते-निखारते, स्वर्ण-सिंहासन बन जाता है। वह परमात्मा के विराजने योग्य हो जाता है। उसके द्वार पर परमात्मा आज नहीं कल दस्तक देता है। एक क्षण की देरी भी न होगी। जिस क्षण तुम तैयार हो, उसी क्षण तुम्हारे द्वार पर दस्तक पड़ जाएगी। देर तभी तक है, जब तक तुम तैयार नहीं हो। रोने से कुछ न होगा। चीखने-पुकारने से कुछ न होगा। तैयारी चाहिए।

और तैयारी का अर्थ है, रूपांतरण, ट्रासफार्मेशन। तुम्हें अपने को बदलना होगा, बहुत-बहुत रूपों में। अगर तुम गौर से अपने को देखोगे, तो खुद ही पाओगे कि परमात्मा तो दूर, अगर तुमको भी इस घर में रहने के लिए पूछा गया होता, जो तुम हो, तो शायद तुम भी राजी न होते। तुम जैसे हो, अगर ऐसे ही व्यक्ति से तुम्हें प्रेम करना पड़े, तो तुम इनकार कर इसलिए तो कोई अपने को प्रेम नहीं करता। तुम अपने प्रेम के पात्र होने के योग्य भी नहीं हो। इसलिए तो लोग अकेले में परेशान होते हैं। अपने साथ रहने को कोई राजी नहीं है। अगर तुम्हें घड़ी दो घड़ी अकेले बैठना पड़े, तो तुम बेचैन होते हो। कहते हो मित्र चाहिए, क्लब, सिनेमा, बाजार, रेडियो, टेलीविजन, अखबार, कुछ चाहिए। ऐसा अपने साथ कैसे बैठे रहें? बड़ी ऊब पैदा होती है। तुम अपने से ऊबे हुए हो। तुम अपने सत्संग में जरा भी नहीं रह सकते और तुम परमात्मा की आकांक्षा करते हो! जब तुम खुद ही अपने साथ रहने को राजी नहीं, तो इतना तो पक्का समझना कि तुम्हारे साथ कौन रहने को राजी होगा?

और परमात्मा तो फिर बहुत दूर है। परमात्मा का अर्थ है, अस्तित्व का गहनतम शिखर तुम्हारे हृदय में उतरे। लेकिन फिर उसके लिए गहराई बनाओ। वहां उतनी गहराई तो चाहिए। तुम इतने छिछले हो, कि जरा सी बात तुम्हारे भीतर तूफान ले आती है। जरा से कंपन से तुम कंप जाते हो। जरा सा अपमान, और तुम आग हो जाते हो। जरा सा दुख, और तुम समझते हो नर्क टूट पड़ा। तुम छोटे-छोटे से इतने व्याकुल हो जाते हो कि तुम्हारी कोई गहराई तो नहीं है। कोई एक छोटा सा पत्थर फेंक दे तो तुम्हारे भीतर तूफान आ जाए, तो जाहिर है कि तुम कोई गहरे सागर नहीं हो।

सागर में तो हिमालय भी डूब जाए तो भी लहरों को कोई खबर न आएगी, कोई फर्क न पड़ेगा। इतनी नदियां गिरती हैं सागर में, इंच भर सागर ऊंचा नहीं उठता। जैसा है वैसा ही बना रहता है।

तुम परमात्मा की आकांक्षा कर रहे हो। कभी तुमने सोचा कि अगर परमात्मा आ जाए, तो तुम्हारी क्या गति होगी? तुम तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कहां बिठाओगे उसे? तुम कैसे उसका स्वागत करोगे? तुम तो भाग खड़े होओगे अपने घर से।

तुम्हारे पास न सिंहासन है, क्योंकि सिंहासन कोई सोने का बनाना होता तो तुम बना भी लेते। सिंहासन हृदय का बनाना है। सिंहासन प्रेम का बनाना है। सोना तो बाजार में मिल जाएगा, प्रेम कहां पाओगे? महल बनाना होता, तो बहुत महल हैं, बन जाते, मिल जाते। फिर तो सम्राटों के घर परमात्मा उतर आता। लेकिन भीतर महल को बनाना है। शून्य का महल बनाना है, ध्यान का महल बनाना है। बड़ा कठिन है। लंबी यात्रा है।

तुम जहां हो, अगर तुमने समझ लिया कि यही घर है, तो तुम गृहस्थ। और अगर तुमने समझा कि धर्मशाला है, थोड़ी देर टिके हैं, विश्राम करते ही आगे जाना है...।

एक बहुत पुरानी सूफी कहानी है। एक सूफी फकीर से किसी ने पूछा कि परमात्मा को पाने का राज क्या है? तो उसने कहा कि मैं तुझसे एक कहानी कहता हूं। और उसने कहा कि एक लकड़हारा था और वह लकड़ियां काटता रोज, जंगल से शहर लाता। वह रोज यही करता रहा पूरे जीवन। इतना भी न कमा पाता कि दो जून रोटी मिल जाए। एक बार कभी रोटी मिल जाती, तो रात कभी भूखा सोता।

एक फकीर जंगल में रहता था। वह इसे रोज देखता था। उसे दया आ गयी। उसने कहा कि तू बहुत नासमझ है। जरा जंगल में और आगे क्यों नहीं जाता? उस लकड़हारे ने कहा, आगे जाने से क्या होगा? फकीर ने कहा, तू जरा आगे जा। तू यहीं से लकड़ियां काट कर लौट जाता है। नाहक दरिद्र है। जो जरा और आगे गया, समृद्ध हो गया।! क्योंकि और आगे तांबें की खदान है।

वह आदमी थोड़ा और आगे गया। तांबे की खदान मिल गयी। वह तांबा बेचने लगा ला कर। फिर कुछ दिन बाद वह फकीर मिला। और उसने कहा कि नासमझ, अब भी तुझे खयाल नहीं आया? अब लकड़ियों से तुझे तांबा मिल गया। तो थोड़ा और आगे क्यों नहीं जाता? चांदी की खदान है।

जरा और आगे गया, चांदी की खदान मिल गयी। वह संपन्न होने लगा।

वह फकीर फिर एक दिन गुजरता था। और उसने कहा कि तुझे अक्ल है या नहीं? तू मंत्र को समझ ही नहीं रहा। और आगे जा! सोने की खदान है।

वह आदमी और आगे गया, लेकिन सोने में उलझ गया। हमारे जैसा ही लकड़हारा होगा! जहां पहुंच जाते हैं, वहीं उलझ जाते हैं। जहां बैठ गए, वहां से उठने का नाम ही नहीं लेते। उस फकीर ने कहा कि नासमझ, तुझे कितनी बार मैंने कहा कि और आगे! आगे सोने की खदान है। वह और आगे गया और सोने की खदान में उलझ गया, जहां कि बहुत लोग उलझ गए है।

फकीर ने एक दिन उसके पास से गुजरते हुए कहा, तुझे कभी भी अक्ल न आएगी। तू जड़-बुद्धि का जड़-बुद्धि रहा। तू बाहर से अब संपन्न हो गया, लेकिन भीतर अब भी दरिद्र है। मुझे तुझ पर दया आती है। तुझसे कितनी बार कहा है, और आगे। आगे हीरों की खदान है। वह और आगे गया।

फिर कई वर्षों के बाद फकीर वहां से गुजर रहा था। तब वह हीरों में उलझा था। उसने बड़े महल खड़े कर लिए थे। उसके पास बड़ा धन था, अंबार थे। फकीर ने कहा, तू एक दया का पात्र, दया का पात्र ही बना हुआ है। तू भीतर गरीब का गरीब है। जैसा तू लकड़हारा था, वैसा ही अब है। क्योंकि सोना, संपत्ति, हीरे, जवाहरात सब बाहर हैं। तू और आगे क्यों नहीं जाता?

उस आदमी ने कहा, क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हो? तुम मुझे चैन से क्यों नहीं रहने देते? तुम क्यों और आगे, और आगे, लगाए हुए हो? अब क्या और आगे मिल सकता है? अब हीरे मिल गए!

उस फकीर ने कहा, और आगे मेरा आश्रम है। और असली हीरे तुझे मैं दे सकता हूं। व ध्यान के हीरे हैं। अभी तक तू बाहर की खदानें ही खोजता रहा। और आगे भीतर की खदान शुरू होती है।

उसने तब तक तो सुना था, लेकिन अब उसने कहा, कि यह जरा ज्यादा...। मेरी समझ के बाहर है। मुझे तो यहीं रुक जाने दें।

फकीर ने कहा, तेरी मर्जी। लेकिन यह खदान जो और आगे है, सदा नहीं रहेगी। क्योंकि मैं आज हूं, कल नहीं हो जाऊंगा। जो खदानें तूने अब तक पायी हैं, वे सदा रहेंगी। हम रहें या न रहें। हमसे पहले थीं, हमसे बाद भी रहेंगी।

ध्यान की खदान कभी-कभी प्रकट होती है। हजारों वर्षों में कभी-कभी प्रकट होती है। कभी कोई आदमी उस खदान को खोज लेता है और द्वार बन जाता है। उसी को नानक गुरु कहते हैं। और उसी के द्वार को नानक गुरुद्वारा कहते हैं। जिस आदमी के जीवन में ध्यान की खदान आ जाती है, वह द्वार बन जाता है। लेकिन वह सदा नहीं रहता। और तुम ऐसे अंधे हो कि तुम उस द्वार के पास से भी निकल जाओगे, वह तुम्हें दिखायी न पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारी नजर तो दृश्य धन पर लगी है, अदृश्य धन की तो तुम्हें कोई खबर नहीं है।

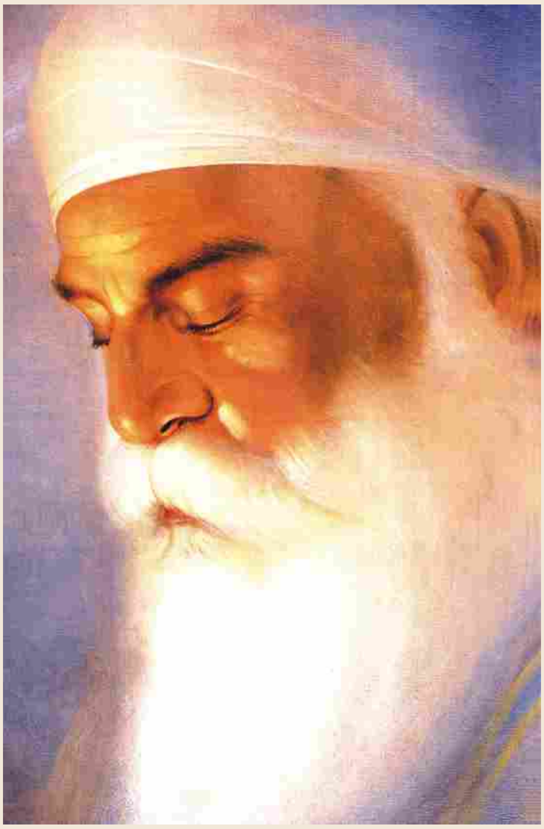

यह और आगे का सूत्र जिस आदमी को खयाल में बना रहता है...तब तक तुम इस मंत्र को मत भूलना जब तक परमात्मा ही न मिल जाए। उसके पहले जो राजी हो गया, वह भटक गया, वह गृहस्थ हो गया। इसलिए संन्यासी की अतृप्ति का कोई अंत नहीं है। परमात्मा को ही पी लेगा तभी प्यास को बुझाएगा। उससे छोटे पानी उसके काम के नहीं हैं।

नानक इसलिए इस संसार को धर्मशाला कहते हैं। उनका सूत्र समझें।

*राती रुति थिति वार। पवन पानी अगनी पाताल।।*
*तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।*

'परमात्मा ने रात, ऋतु, तिथि, वार, हवा, पानी, आग और पाताल रच कर, उस सब के बीच धरती को धर्मशाला के रूप में स्थापित किया। उसके बीच उसने रंग-रंग के जीवों का विधान किया, जिनके नाम अनेक और अनंत हैं। वहां अपने-अपने कर्म के अनुसार उनका विचार होता है।'

तो पहली तो बात, यह संसार धर्मशाला है, सराय है। इसे तुम जितने गहरे अपने भीतर ले जा सको, उतना ही उपयोगी है। क्योंकि जितनी यह बात तुम्हारे भीतर उतर जाए, कि तुम जहां हो वहीं रुके रहना मौत है—और आगे, और आगे, और आगे—जब तक कि परमात्मा का ही द्वार न आ जाए, तब तक यात्रा जारी रखना। तब तक यात्रा बंद मत करना। तब तक थको तो विश्राम कर लेना, लेकिन विश्रामगृह को घर मत बनाना।

थकान होगी, क्योंकि यात्रा बड़ी है, मंजिल दूर है। हजारों बार तुम भटकोगे। क्योंकि कोई बंधा-बंधाया रास्ता नहीं है। कोई राजपथ नहीं है। कोई हाई-वे नहीं है कि तुम चले जाओ। आदमी चल कर ही अपना रास्ता बनाता है। परमात्मा का मार्ग इसलिए दूर है। जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं और उनके पैरों के कोई चिह्न नहीं छूटते; ऐसे ही परमात्मा के आकाश में सिद्ध-पुरुष चलते हैं, पहुंच जाते हैं, पर उनके पैरों के कोई चिह्न नहीं छूटते। आकाश फिर खाली का खाली होता है।

तुम जब चलोगे, तब तुम किसी के चरण-चिह्नों पर नहीं चल सकते। उधारी सत्य के जगत में संभव नहीं है। सत्य कोई दूसरा तुम्हें दे नहीं सकता। इशारे मिल सकते हैं। प्रेम मिल सकता है। गुरु की कृपा मिल सकती है। लेकिन सत्य तुम्हें ही खोजना पड़ेगा। उसकी कृपा तुम्हारे पैरों को मजबूती दे सकती है, मार्ग नहीं दे सकती है। उसकी कृपा तुम्हें आश्वासन दे सकती है, रास्ता नहीं दे सकती। उसकी कृपा तुम्हें, डगमगाओ न, डरो मत, इसके लिए हिम्मत दे सकती है, लेकिन मार्ग पर तुम्हीं को चलना पड़े। और मार्ग कुछ ऐसा है कि तुम चलो तो बनता है, चलने से ही बनता है। बंधा-बंधाया, तैयार मार्ग नहीं है। रेडीमेड, परमात्मा की तरफ जाने का कोई उपाय नहीं है। हर मनुष्य को अपना मार्ग खोजना पड़ता है। यही कठिनाई है, लेकिन यही गरिमा भी है। क्योंकि अगर बंधा-बंधाया मार्ग होता, बासा मार्ग होता, जिस पर लाखों लोग चल चुके होते, और तुम भी चलते, तो परमात्मा को पाने का कुछ मजा न रह जाता।

परमात्मा जब भी मिलता है किसी व्यक्ति को, तो ताजा और नया, मौलिक। जैसे तुम्हें ही पहली बार मिल रहा है। इसके पहले यह मिलन की घटना कभी घटी ही नहीं। बासा नहीं, कि दूसरे भी उससे मिल गए हैं तुमसे पहले, कि दूसरे भी उसके द्वार पर अपने चरण-चिह्न छोड़ गए हैं, कि दूसरों ने भी उसके दरवाजे पर अपने हस्ताक्षर कर दिए हैं।

नहीं, तुम जैसे बिलकुल नए आए हो, पहली दफा आए हो। जैसे वह कुंवारा तुम्हारे लिए प्रतीक्षा कर रहा हो। परमात्मा सदा कुंवारा है। अगर बहुत लोगों से उसका विवाह पहले रच गया होता, तो जानने योग्य भी न रहा जाता। उसका कुंवारापन शाश्वत है। जो भी पहुंचेगा, उसे कुंवारा पाएगा, ताजा और नया पाएगा। ऐसे जैसे सुबह की ओस ताजी होती है, जैसे सुबह की पहली किरण ताजी होती है, ठीक ऐसा ही ताजा तुम पाओगे। बंधे-बंधाए रास्ते नहीं हैं।

और न कोई नक्शा है, जो तुम्हें दे दिया जाए, कि इस नक्शे के अनुसार चलना। क्योंकि जीवन सतत परिवर्तन है। वहां सब प्रतिपल बदल रहा है। जिस ढंग से मैं पहुंचा, वह ढंग तुम्हारे काम न आएगा। वह ढंग मेरे काम आया। वह ढंग तुम्हारे काम न आएगा।

क्योंकि नानक कहते हैं, 'परमात्मा ने अनेक-अनेक जीव, अनेक-अनेक आत्माएं भिन्न-भिन्न रंगों और रूपों में बनायी है।'

एक-एक व्यक्ति अनूठा है। अगर एक-एक व्यक्ति अनूठा है, तो जो मेरे काम पड़ा, वह तुम्हारे काम न पड़ेगा। मेरी समझ तुम्हारे काम पड़ सकती है, मेरा मार्ग नहीं। मेरी समझ तुम्हें मार्ग खोजने में सहयोगी हो सकती है, लेकिन तुम जो मार्ग खोजोगे वह बिलकुल तुम्हारा होगा। वह तुम्हारा निजी होगा। उस पर तुम्हारी छाप होगी। जैसे तुम्हारे अंगूठे का निशान बस तुम्हारा है। अरबों-खरबों लोग हुए हैं पृथ्वी पर, और अरबों-खरबों लोग आज हैं, और अरबों-खरबों लोग आगे होंगे, लेकिन तुम्हारे अंगूठे का निशान कभी फिर नहीं दोहरेगा। जब तुम्हारे अंगूठे का निशान तक अस्तित्व इतना मौलिक बनाता है, तो तुम्हारी आत्मा को कितनी मौलिक बनाता होगा, तुम सोच सकते हो!

नयी चिकित्सा-शास्त्र की खोजें बड़ी गहरी बातों में उलझ गयी हैं। उनमें एक गहरी बात यह है कि तुम अगर चिकित्सा-शास्त्र की किताबें पढ़ो, तो तुम हृदय का चित्र बना हुआ पाओगे। किडनी का, फुफ्फस का, फेफड़ों का चित्र तुम बना पाओगे। वे चित्र केवल औसत हैं। हर आदमी का फेफड़ा अलग रंग, आकार का है। किसी दूसरे आदमी का फेफड़ा वैसा नहीं है। नवीनतम खोजें कहती हैं, कि शरीर का हर रंग, हर आदमी का अनूठा है। दो आदमियों के हृदय एक जैसे नहीं हैं। अंगूठे की छाप ही नहीं, शरीर का कण-कण तुम्हारा, बस तुम्हारे जैसा है। और परमात्मा तुम्हें दुबारा पैदा नहीं करता। तुम जैसा फिर वह किसी को नहीं बनाएगा। तुम अनूठे हो। तुम्हारे पहुंचने का मार्ग भी अनूठा होगा। तुम अद्वितीय हो। तुम्हारे पहुंचने का मार्ग भी अद्वितीय होगा। मजबूरी और कठिनाई भी है, गरिमा भी यही है, गौरव भी यही है, कि तुम नवीनतम, एकदम नूतन मार्ग से उस तक पहुंचोगे। वह तुम्हारे लिए बासा नहीं होगा।

यह जो बात है, अगर ठीक से समझ में आ जाए, तो इसी का अर्थ आत्मा है। मशीनें हम एक जैसी हजारों बना सकते हैं। फोर्ड की एक कार जैसी लाख कारें हो सकती हैं, दस लाख कारें हो सकती हैं। एक का कल-पुर्जा दूसरे में फिट हो जाएगा। एक कार और दूसरी कार में फर्क करना मुश्किल होगा कि क्या फर्क है? लेकिन दो आत्माएं एक जैसी नहीं होती। प्रत्येक आत्मा अद्वितीय होती है।

इसका अर्थ यह है—अगर इसे हम कवि और संत या भक्तों की भाषा में कहें—तो इसका अर्थ यह हुआ, कि आत्मा किन्हीं यंत्रों में ढाल कर नहीं बनायी जा सकती। परमात्मा जैसे एक-एक आत्मा को अपने हाथ से रचता है। यही उसके स्रष्टा होने का अर्थ है। जैसे चित्रकार एक चित्र बनाता है। तुम उससे कहो कि दुबारा इसी को बनाओ, तो वह ठीक वैसा चित्र दुबारा न बना सकेगा। खुद वही चित्रकार भी न बना सकेगा। भेद हो जाएंगे। क्योंकि समय बीत गया। चित्रकार भी भिन्न हो गया। उसकी भावदशाएं

भिन्न हो गयीं। जिस भावदशा में पहला चित्र बनाया था, अब वह भावदशा न रही।

पिकासो एक बार चित्र बना रहा था। और एक मित्र उसके पास आया। उसने देखा उसको चित्र बनाते, लेकिन वह इतना तल्लीन था कि वापस लौट गया। फिर वह चित्र बाजार में बिका तो उस आदमी ने खरीद लिया। क्योंकि पिकासो के झूठे चित्र बाजार में बिक रहे हैं। लेकिन यह चित्र तो वह अपनी आंख से पिकासो को बनाते देख कर आया था। तो उसने खरीद लिया। लाखों रुपए उसमें लगे। चित्रकार से मिलने आया था—पिकासो से—वह मित्र। तो उसने एक बार पूछा—वह चित्र साथ ले आया—और उसने कहा कि यह चित्र प्रामाणिक तो है न? क्योंकि मैंने तुम्हें बनाते देखा था। पिकासो ने कहा कि बनाया तो मैंने ही है, लेकिन प्रामाणिक नहीं है। वह मित्र तो हैरान हुआ! क्योंकि प्रामाणिक का तो एक ही अर्थ होता है कि चित्रकार ने स्वयं बनाया है। किसी ने नकल और कापी नहीं की। आथेंटिक है, पिकासो ने कहा, इस अर्थ में कि मैंने बनाया है। और आथेंटिक नहीं है, क्योंकि मैंने केवल अपने पहले बनाए हुए चित्रों की प्रतिकृति की है। बनाते वक्त मैं रचनाकार नहीं था। बनाते वक्त मैं सिर्फ कापी कर रहा था—अपने ही चित्रों की—लेकिन बनाते वक्त मेरा स्रष्टा मौजूद नहीं था। उस मित्र ने पूछा, स्रष्टा का तुम्हारा क्या अर्थ है? तो पिकासो ने कहा, स्रष्टा मैं तभी होता हूं जब मैं अद्वितीय बनाता हूं, यूनीक, बेजोड़! और जब मैं नकल करता हूं तब कैसा स्रष्टा!

**जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं और उनके पैरों के कोई चिह्न नहीं छूटते; ऐसे ही परमात्मा के आकाश में सिद्ध-पुरुष चलते हैं, पहुंच जाते हैं, पर उनके पैरों के कोई चिह्न नहीं छूटते। आकाश फिर खाली का खाली होता है**

इसलिए कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, जब वस्तुतः कोई मौलिक चीज बनाते हैं, तब परमात्मा के निकटतम होते हैं। उतने ही निकट जितने भक्त, जितने संत। जितना ध्यान में बुद्ध निकट होते हैं परमात्मा के, उतना ही अजंता की मूर्तियों को, एलोरा के चित्रों को खोदता हुआ चित्रकार भी होता है। ये दूसरे मार्ग से।

जब भी तुम किसी चीज का सृजन करते हो, और अगर सृजन मौलिक है, तुम नकल नहीं कर रहे हो, इमिटेशन नहीं है, तो इससे बड़ी कोई प्रार्थना नहीं हो सकती। क्योंकि परमात्मा के तुम निकटतम हो। तुम उसके ही जैसे हो उस क्षण में। तुम भी स्रष्टा हो। इसलिए सृजन का इतना आनंद है। तुम छोटी सी भी चीज बना लेते हो तो कितने प्रसन्न होते हो।

एक छोटा सा बच्चा ताश का घर बना लेता है, तो खबर करता है आस-पड़ोस में कि मैंने एक घर बना लिया। एक रेत में घर बना लेता है, जो अभी गिर जाएगा क्षण भर बाद। लेकिन बच्चे की खुशी देखो! वह नाच रहा है।

जीवन में आनंद के क्षण सृजन के क्षण हैं। जब तुम बनाते हो, तब तुम आनंदित होते हो। और जिनके जीवन बिना सृजन के बीत जाते हैं, उनके जीवन में सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं होता।

क्यों ऐसा है? जब तुम कुछ बनाते हो तो क्यों आनंदित होते हो? क्योंकि बनाने के क्षण में एक झलक स्रष्टा की मिलती है। वह स्रष्टा है, तुम भी उस क्षण में छोटे-मोटे स्रष्टा हो जाते हो। तुम एक बगीचे में पौधा लगाओ, और जब पौधे में फूल आए तब तुम्हें एक आनंद होगा। वह आनंद वही है। बड़ी छोटी मात्रा में, निश्चित ही बूंद की तरह है, लेकिन आनंद वही है जो परमात्मा को सारे जगत को खिलता हुआ देख कर होता है। मात्रा का भेद हो, गुण का भेद नहीं है।

नानक कहते हैं, 'उसने रंग-रंग के जीवों का विधान किया, जिनके नाम अनेक हैं और अनंत हैं।'

यह जो परमात्मा का फैलाव है, जो सृजन है, क्रिएटिविटी है, अगर तुम इसे पहचान लो—परमात्मा को पहचानना तो मुश्किल है, क्योंकि वह तो छिपा हुआ है—लेकिन अगर तुम उसकी दृश्य-कृति को पहचान लो, तो पहली पहचान हो गयी। एक कदम उठ गया। देखो जगत को! एक गहन व्यवस्था से आपूरित है। चांद उगता है, सूरज उगता है, तारे घूमते हैं। ऋतु आती है, फूल खिल जाते हैं। सुबह होती है, पक्षी चहचहाते हैं। झरने बह-बह कर सागर पहुंचते रहते हैं। सागर बादलों में उमड़-घुमड़ कर वापस झरनों में बरसता रहता है। एक व्यवस्था है। जगत एक कासमास है, केयास नहीं। एक अराजकता नहीं है। एक सुसंबद्ध व्यवस्था है। इस महत व्यवस्था को अगर तुम पहचानने लगो...।

जितना तुम इस व्यवस्था को पहचानोगे और जितना तुम्हें जगत में चलते हुए नियम की धारा दिखायी पड़ेगी, उतना ही तुम्हें परमात्मा का हाथ स्मरण आने लगेगा। क्योंकि व्यवस्था बिना हाथों के नहीं हो सकती। और जहां इतनी विराट व्यवस्था है वहां इतने ही विराट हाथ होंगे। इसलिए तो हिंदू कहते हैं कि उसके हजार हाथ हैं। हजार का मतलब अनंत हाथ हैं। क्योंकि दो हाथों से यह कृत्य नहीं हो सकता। यह तो अनंत अस्तित्व है, यह अनंत हाथों से ही संभाला जा सकता है।

नानक कहते हैं, उसी ने बनायी रात, उसी ने बनायी ऋतु, उसी ने बनायी तिथि, उसी ने बनायी हवा, पानी, आग, पाताल, पृथ्वी। सब उसने बनाया है। और इन सब के बीच में उसने बनायी पृथ्वी, कि तुम इस अनंत की यात्रा में विश्राम कर सको।

लेकिन वह धर्मशाला है। वहां तुम घर बना कर मत बैठ जाना। लोग अनेक-अनेक तरह के घर बना-बना कर बैठ गए हैं। भूल ही गए हैं। जैसे

कोई आदमी रात धर्मशाला में ठहरें और सुबह भूल ही जाए कि धर्मशाला है। और फिर वहीं रहने लगे। और धर्मशाला की ही उलझन को अपनी उलझन बना ले। धर्मशाला की चिंता को अपनी चिंता समझ ले। फिर परेशान हो, पीड़ित हो, दुखी हो और पूछता फिरे शांति का मार्ग। और जब भी कोई उससे कहे कि धर्मशाला को तुम घर क्यों बनाए हुए हो? तभी वह कहे कि अभी छोड़ना बहुत मुश्किल है। अभी जरा कठिनाई है। समझ में तो मुझे भी आता है। लेकिन जरा वक्त की जरूरत है। धीरे-धीरे छोडूंगा।

सवाल धीरे-धीरे छोड़ने का नहीं है। सवाल छोड़ने का है ही नहीं। सवाल देखने का है। देखने के लिए क्या समय लगाने की जरूरत पड़ती है! एक क्षण में दिखायी पड़ जाता है। देखने के लिए समय बिलकुल ही गैर जरूरी है। अगर तुम देखने को राजी हो, तो तुम्हें बिलकुल साफ दिखायी पड़ सकता है कि जहां तुम हो वह धर्मशाला है। क्योंकि तुम सदा तो वहां न थे।

जन्म के पहले तुम कहां थे? मरने के बाद तुम कहां होओगे? थोड़े से दिन का मेला है। और इन थोड़े से दिन में तुम इतने जड़ हो कर चिपक गए हो! जो है, उसको भी पकड़ लिया है। जो नहीं है, उस तक को तुम पकड़े हुए हो। आदमी के पास जो संपत्ति है, उसको तो वह पकड़ता ही है, भविष्य की जो वासनाएं हैं और सपने हैं, उनको भी पकड़े हुए है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक घर बनाया। वह मुझे दिखाने ले गया उसने बड़ा बगीचा लगाया था। उसमें स्नान के लिए तालाब बनाए। उसने कहा कि यह गर्म पानी का तालाब है। यह सर्दियों में स्नान के लिए बनाया है। फिर उसने कहा कि यह ठंडे पानी का तालाब है। यह दूसरा तालाब हैं यह हमने गर्मियों में स्नान के लिए बनाया है। फिर उसने तीसरा तालाब बताया कि यह बिना पानी का तालाब है। मैंने उससे पूछा कि यह किसलिए बनाया है? उसने कहा कि यह उन समयों के लिए जब न नहाना हो, उस मौके के लिए। आदमी नहाने का भी इंतजाम करता है और न नहाने का भी इंतजाम करता है। जो तुम्हारे पास है उसका भी तुम इंतजाम करते हो; जो तुम्हारे पास नहीं है उसका भी तुम इंतजाम करते हो। तुम जो हो उसको तो पीड़ा से भरे ही हो, जो कभी होगा वह चिंता भी तुम्हें घेरती है। तुम कभी अपने मन को गौर से देखो, तो तुम पाओगे कि वह अतीत की चिंताओं से भरा है, जो अब है ही नहीं। कोई घटना जो बीस साल पहले घटी थी, वह तुम्हारे मन में चलती है। वह बची ही नहीं है। अब कुछ भी नहीं बचा है। और कोई बात जो बीस साल बाद होगी, उसका तुम विचार कर रहे हो। तुम अपनी चिंताओं को हजार गुना कर लेते हो।

और किसके लिए तुम चिंतित हो रहे हो? रास्ते पर बने हुए एक सराय के लिए। और इस समय में जिनसे तुम्हारा मिलना हो गया है, तुम उनके लिए बड़े परेशान हो रहे हो। पति है, पत्नी है, बेटा है, मां है, पिता है, और सब की मुलाकात सराय में हुई है। रास्ते के किनारे मिलना हो गया है। और तुम भारी परेशान हो। तुम्हें एक भर चिंता नहीं है कि तुम

नानक कहते हैं, 'इस पृथ्वी को उसने धर्मशाला की तरह बनाया।'

इस प्रतीक को ठीक से समझ लेना।

'और वहां अपने-अपने कर्म के अनुसार उनका विचार होता है।'

और इस जगत में तुम जो भी कर रहे हो, वह बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि अंततः तुम्हारे जीवन की नियति उसी से निर्धारित होगी। जगत है धर्मशाला, जहां रुक कर आगे बढ़ जाने की जरूरत है। लेकिन तुम वहां बहुत से कामों में लगे हो। धर्मशाला तो छूट जाएगी पीछे, लेकिन तुम ने धर्मशाला में जो किया, वह तुम्हारा अनुगमन करेगा। वह तुम्हारी छाया हो जाएगी। वह तुम्हारा जन्मों-जन्मों तक पीछा करेगा। और अंतिम निर्णय, तुमने क्या किया, क्या तुम्हारे कर्म थे, उन पर निर्धारित होगा।

अब यह थोड़ा सोच लेने जैसा है। अगर तुम्हें याद आ जाए कि तुम धर्मशाला में हों और यह याद बनी रहे, तो बहुत से कर्म तो तत्क्षण विलीन

हो जाएंगे। तुम क्या पत्नी पर क्रोध करोगे? क्रोध का प्रयोजन क्या है? दो क्षण का मिलना है, फिर छूट जाना है। इस दो क्षण में तुम पत्नी को अपना मान लेते हो, इसीलिए क्रोध भी करते हो। अपना मान लेते हो, इसलिए झगड़ते भी हो। पत्नी तो छूट जाएगी। क्योंकि मौत के समय तुम पत्नी को अपने साथ न ले जा सकोगे। लेकिन तुमने जो क्रोध किया, तुमने जो नाराजगी की, तुमने जो दुख पहुंचाया, वह सब कृत्य तुम्हारे साथ चले जाएंगे। सपने तो टूट जाएंगे, लेकिन सपनों में तुमने जो किया, वह तुम्हारा पीछा करेगा। यह सौदा महंगा है। यह सौदा बिलकुल ही महंगा है। इससे मिलता तो कुछ नहीं सिवाय खोने के। संसार में आदमी पाता कुछ नहीं, सिर्फ खोता है।

नानक कहते हैं, इस धर्मशाला में अगर तुम स्मरण रख सको कि यह धर्मशाला है, तो तुम्हारे निन्यानबे प्रतिशत कृत्य तो बंद हो जाएंगे। तुम

रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर बैठे हुए हो, या विश्रामगृह में बैठे हो, वेटिंग रूम में, वहां तुम कैसा व्यवहार करते हो? वहां किसी आदमी का चलते वक्त अगर तुम्हारे पैर पर जूता भी पड़ जाता है, तो भी तुम कहते हो स्टेशन है, भीड़-भड़क्का है। तुम नाराज नहीं होते।

मुल्ला नसरुद्दीन ने बहुत जीवन के देरी तक शादी नहीं की। जब वह पचास साल का हो गया तो मित्रों ने उससे पूछा कि तुम रुके क्यों हो? शादी क्यों नहीं कर लेते? उसने कहा कि ऐसा हुआ कि मैं एक सिनेमागृह के बाहर निकल रहा था। और एक स्त्री के पैर पर मेरा पैर पड़ गया। वह झपट कर लौटी! और जैसे रण-चंडिका हो, काली का अवतार हो। और उसकी आंखों से आग! और ऐसा लगा कि वह या तो मुझे मारेगी, या मेरी गर्दन दबा देगी, या झपट पड़ेगी। लेकिन तभी वह एकदम शांत हो गयी मुझे देख कर। और उसने कहा, कोई बात नहीं। मैं समझी कि मेरा पति

इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुमने एक स्त्री के साथ सात चक्कर लगा लिए अग्नि के? सात चक्कर लगाने से कोई स्त्री तुम्हारी हो जाएगी? सात क्या, तुम सात हजार चक्कर लगाओ। सात तो शुरुआत है, जिंदगी में कितने लाख चक्कर लगाने पड़ते हैं! कुछ हल नहीं होता। तुम जहां थे वहीं हो

है। तभी मैंने तय कर लिया कि शादी की झंझट में नहीं पड़ना है।

पराया आदमी है, क्या झंझट लेनी है! हो गयी भूल उससे, पैर पर पैर पड़ गया। हम परायों को माफ कर देते हैं, लेकिन अपनों को माफ नहीं कर पाते। बड़ी हैरानी है, अजनबी को हम क्षमा कर देते हैं। निकट जो है, उसे क्षमा नहीं कर पाते। क्यों? क्या कारण है? अजनबी और निकट में फर्क क्या है? अजनबी अजनबी है, उससे संबंध धर्मशाला का है। निकट जो है, वह अजनबी नहीं रहा है, ऐसी हमारी भ्रांति है। उससे संबंध घर का है।

जो आदमी इस पूरे संसार को धर्मशाला समझ लेगा, उसके लिए सभी अजनबी हैं, स्ट्रेंजर्स हैं—हैं भी! पत्नी चाहे तीस साल तुम्हारे पास रहे, क्या तुम सोचते हो, अजनबी नहीं रही? क्या तुम सोचते हो, तीस साल साथ रहने से जो पराया है वह अपना हो जाता है? भ्रांति होती है। अपना तो हो ही नहीं सकता कोई इस जगत में। अपना होने का यहां उपाय नहीं है। अपना तो सिर्फ परमात्मा हो सकता है। लेकिन उसकी तुम्हें कोई खोज

अपना तो सिर्फ परमात्मा हो सकता है। लेकिन उसकी तुम्हें कोई खोज नहीं है। तुम अजनबियों को अपना मान कर बैठे हो।

एक बेटा तुम्हारे घर पैदा हुआ। तो तुम सोचते हो कि तुमसे पैदा हुआ, इसलिए अजनबी नहीं है। तो जिंदगी तुम्हें गलत सिद्ध करेगी। बाप भी तो बेटे के जीवन के संबंध में कुछ तय नहीं कर पाता। बाप कुछ बनाना चाहता है, बेटा कुछ बनता है। बाप कुछ और चाहता था, बेटा कुछ और होता है। बाप की आकांक्षा कुछ और थी, बेटे की अभीप्सा कुछ और है। कौन बाप अपने बेटे से तृप्त होता है? तुमने कोई बाप देखा जो बेटे से तृप्त हो? तुमसे पैदा हुआ, लेकिन अजनबी है। बाप भी तो प्रेडिक्ट नहीं कर सकता बेटे को कि क्या इसका भविष्य होगा। बाप भी तो तय नहीं कर सकता कि बेटे को वही बना ले जो बनाना चाहता है। बड़े से बड़े बाप हार जाते हैं। कोई उपाय नहीं है। पति लाख चेष्टा करता है पत्नी को सुधारने की। पत्नी कितनी चेष्टाएं करती है पति को सुधारने की। कौन किसको सुधार पाता है? सुधारने में बिगाड़ हो जाता है भला, सुधार तो नहीं हो पाता।

क्योंकि हम सब अजनबी हैं। हम सब अपने-अपने कर्मों से जी रहे हैं। हमें कोई दूसरा न सुधार सकता है, न बदल सकता है। हमारी अपनी-अपनी अलग-अलग यात्रा है। थोड़ी देर को चौराहे पर मिल गए हैं। और इस मिलने को हमने इतना ज्यादा मान लिया है।

इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुमने एक स्त्री के साथ सात चक्कर लगा लिए अग्नि के? सात चक्कर लगाने से कोई स्त्री तुम्हारी हो जाएगी? सात क्या, तुम सात हजार चक्कर लगाओ। सात तो शुरुआत है, जिंदगी में कितने लाख चक्कर लगाने पड़ते हैं! कुछ हल नहीं होता। तुम जहां थे वहीं हो।

यहां इस संसार में परायापन मिट ही नहीं सकता। यहां तुम कितने ही निकट आ जाओ तो भी दूरी रहेगी। यही तो पीड़ा है सभी प्रेमियों की। प्रेमी चाहता है कि इतने निकट आ जाएं कि दूरी न रहे। लेकिन जितने ही तुम निकट आते हो, उतने ही तुम पाते हो, दूरी है। दूर थे, तो यह भी खयाल था कि शायद पास आएंगे तो दूरी मिट जाएगी। पास आ-आ कर पता चलता है कि दूरी के मिटने का उपाय ही नहीं है। दूरी का मिटना असंभव है। तुम बिलकुल पास-पास बैठ सकते हो। शरीर ही पास-पास होंगे, तुम्हारी भीतरी दूरी तो बनी ही रहेगी। तुम अपने खयाल में, तुम्हारी प्रेयसी अपने खयाल में। तुम्हारे पास तुम्हारा मन है, तुम्हारी प्रेयसी के पास उसका मन है। इन दोनों का कैसे मिलना होगा! इस जगत में मिलन झूठा है। बिछोह सच है। मिलन सपना है। मिलन तो सिर्फ परमात्मा से हो सकता है। एक ही मिलन है।

*– ओशो*
*एक ओंकार सतनाम,*
*सत्रहवां प्रवचन*
*(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)*